REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

भारत में मृत्यु दण्ड : एक आलोचनात्मक परीक्षण

डॉ. राजकुमार
सहायक आचार्य, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0)

सारांश

मृत्यु दण्ड लम्बे समय तक विश्व स्तर पर एक वाद–विवाद का विषय रहा है। आज विश्व समुदाय का झुकाव मृत्यु दण्ड की समाप्ति की ओर है। भारत में भी विधि आयोग ने मृत्यु दण्ड की समाप्ति की सिपारिश की है। ऐसी स्थिति में, मृत्यु दण्ड से जुड़े विभिन्न पहलु पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। इस विषय से जुड़े विभिन्न पहलुओं का इस शोध पत्र में एक आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है।

मृत्यु दण्ड से सम्बन्धित विधियाँ

मृत्यु दण्ड भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 53 में दिये गये दण्डों में से एक दण्ड है। इस धारा के अन्तर्गत दिये गये अन्य दण्ड हैं– कठोर एवं सादा, सम्पत्ति का समपहरण तथा जुर्माना।

मृत्यु दण्ड से सम्बन्धित मुख्य विधि भारतीय दण्ड संहिता है। इस संहिता के अन्तर्गत मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों के विषय में उपबंध इस संहिता की निम्नलिखित धाराओं में दिये गये हैं–

1. धारा 121– भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध करना, युद्ध करने का प्रयास करना या युद्ध करने का दुष्प्रेरण करना।
2. धारा 132– विद्रोह का दुष्प्रेरण यदि उसके परिणामस्वरूप विद्रोह किया जाय।
3. धारा 194– मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध कराने के आशय से मिथ्या साक्ष्य देना यदि उसके परिणामस्वरूप निर्दोष व्यक्ति को फाँसी दी जाय।
4. धारा 195क– किसी व्यक्ति को मिथ्या साक्ष्य देने के लिए धमकी देना या उत्प्रेरित करना यदि उसके परिणामस्वरूप किसी निर्दोष व्यक्ति को फाँसी दी जाय।
5. धारा 302– हत्या कारित करना।
6. धारा 305– शिशु या उन्मत्त व्यक्ति की आत्महत्या का दुष्प्रेरण करना।
7. धारा 307– आजीवन दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा हत्या का प्रयत्न।
8. धारा 364क– मुक्ति–धन (फिरौती) के लिए व्यपहरण।
9. धारा 376क– बलात्कार की शिकार महिला की मृत्यु कारित करना।
10. धारा 376ङ– बलात्कार के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा पुनः बलात्कार किया जाना।

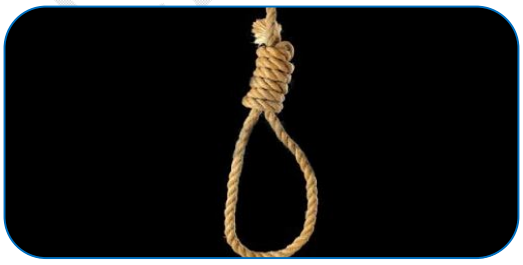

11. धारा 376कख– बारह वर्ष से कम आयु की महिला के साथ बलात्कार करना।
12. धारा 376घख– बारह वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ सामूहिक बलात्कार।
13. धारा 396– हत्या के साथ डकैती।

इन धाराओं के अतिरिक्त धारा 34 एवं 149 के अन्तर्गत सामान्य आशय एवं उद्देश्य को अग्रसारित करने में हुए अपराध, धारा 120ख के अन्तर्गत मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराध को कारित करने के लिए आपराधिक षड़यंत्र करने तथा धारा 109 के अन्तर्गत मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराध के दुष्प्रेरण के लिए भी मृत्यु–दण्ड दिया जा सकता है।

भारतीय दण्ड संहिता के अतिरिक्त सुरक्षा से सम्बन्धित विधियों– वायु सेना अधिनियम 1950, थल सेना अधिनियम 1950, जल सेना अधिनियम 1957, सीमा सुरक्षा बल अधिनियम 1968, सशस्त्र सीमा बल अधिनियम 2007, इत्यादि।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति (नृशंसता निवारण) अधिनियम 1989, तथा आतंकवाद से सम्बन्धित विधियों– विधि विरुद्ध गतिविधि (निवारण) अधिनियम 1967, आतंकी एवं विध्वंसकारी गतिविधि (निवारण) अधिनियम 1987 (अब निरसित) तथा आतंकवाद निवारण अधिनियम 2002 (अब निरसित) में भी मृत्यु दण्ड के लिए उपबंध है।

मृत्यु दण्ड की संवैधानिकता

मृत्यु दण्ड की संवैधानिकता का प्रश्न सर्वप्रथम जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[1] के वाद में उठा। इसकी संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि यह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 एवं 21 की उल्लँघनकारी है।[2]

प्रस्तुत वाद में, उच्चतम न्यायालय के पाँच जजों की संविधान पीठ ने पाया कि मृत्यु दण्ड असंवैधानिक नहीं है तथा इसके अनुच्छेद 14, 19 एवं 21 के उल्लँघनकारी होने की चुनौती को अस्वीकार कर दिया।[3] इसके साथ ही न्यायालय ने यह धारित किया कि मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों में दण्ड देने का दायित्व न्यायाधीशों पर आरोपित है और जज एक शताब्दी से ज्यादा समय से भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपने दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं। दण्ड निर्धारण के विषय में न्यायाधीशों की विवेकीय शक्ति सुस्थापित सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण अभियुक्तों के लिए एक सुरक्षित बचाव है।[4] चूँकि न्यायाधीशों पर अपराध को गम्भीरतर बनाने वाली तथा अपराध की गम्भीरता को कम करने वाली परिस्थितियों के बीच एक सन्तुलन स्थापित करते हुए विवेकीय शक्ति का प्रयोग करने का दायित्व विधि द्वारा आरोपित है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि दण्ड निर्धारण में भेद–भाव (Discrimination) हो सकता है।[5]

इसके साथ ही न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि न्यायाधीश दोष एवं दण्ड का निर्धारण दण्ड प्रक्रिया संहिता में दिये हुए उपबंधों के अनुसार करते हैं तथा ये उपबंध विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के भाग हैं। इस प्रकार विधि द्वारा स्थापित प्रकार के अनुरूप अभियुक्त का विचारण करते हुए मृत्यु दण्ड अधिरोपित करना अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत असंवैधानिक नहीं है।

किन्तु, तीन–जजों की उच्चतम न्यायालय की एक पीठ ने 2:1 के बहुमत से राजेन्द्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[6] में मृत्यु दण्ड को संवैधानिक मानने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि जब अभियुक्त को फाँसी पर लटकाया जाता है तो वह अपने जीवन के अधिकार की मौलिक स्वतंत्रता से वंचित हो जाता है।[7]

ऐसी स्थिति में, मामला उच्चतम न्यायालय के पाँच जजों की संविधान पीठ के पास विचारण के लिए भेजा गया। बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य[8] में पाँच जजों की संविधान पीठ ने मृत्यु दण्ड की संवैधानिकता पर जगमोहन सिंह वाद को स्वीकार करते हुए इसकी संवैधानिकता को अनुमोदित किया तथा राजेन्द्र प्रसाद के निर्णय को अमान्य कर दिया।[9]

---

[1] (1973) 1 एस.सी.सी. 20.
[2] तत्रैव पैरा 5.
[3] तत्रैव पैरा 26, 27 एवं 29.
[4] तत्रैव पैरा 26.
[5] तत्रैव पैरा 27.
[6] ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 916.
[7] तत्रैव पैरा 47.
[8] (1980) 2 एस.सी.सी. 684.
[9] तत्रैव पैरा 166 एवं 215.

यहाँ इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303 आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित किसी दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा हत्या किये जाने पर मृत्यु दण्ड को अनिवार्य बनाती है। किन्तु, पाँच जजों उच्चतम न्यायालय की एक संविधान पीठ ने मिथू बनाम पंजाब[10] में इस धारा को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह धारा अनुच्छेद 14 एवं 21 में प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लँघन करती है।[11]

मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों में दण्ड निर्धारण की प्रक्रिया

मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों में दण्ड मृत्यु दण्ड या उसके विकल्प के रूप में सामान्यतया आजीवन कारावास का दण्ड होसा है। दण्ड निर्धारण की प्रक्रिया दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354 (3) में दी गयी है जिसके अनुसार– जब दोषसिद्धि मृत्यु से अथवा उसके विकल्प के रूप में आजीवन कारावास से या कई वर्षों की अवधि के कारावास से दण्डनीय हो सो दिये गये दण्डादेश के कारणों का और मृत्यु दण्ड की दशा में ऐसे दण्डादेश के लिए विशेष कारणों का निर्णय में कथन होगा।

स्पष्ट है कि अभियुक्त को मृत्यु दण्ड से या उसके विकल्प के रूप में आजीवन कारावास या कई वर्षों के कारावास से दण्डित करते समय न्यायालय अपने निर्णय में उस दिये जाने वाले दण्डादेश के कारणों का वर्णन करेगा।

बच्चन सिंह के वाद में, मृत्यु दण्ड के साथ–साथ दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(3) की संवैधानिकता को चुनौती दिये जाने का प्रश्न भी विचाराधीन था। इस धारा की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि आजीवन कारावास एवं मृत्यु दण्ड के बीच चुनाव का अधिकार न्यायालय को देकर यह धारा मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों के मामले में न्यायालय को विधि बनाने का दायित्व प्रत्यायोजित करती (सौंपती) है जो कि विधायिका का दायित्व है, और इस प्रकार यह धारा मृत्यु दण्ड के मामलों में न्यायालय व मनमाने की अनुमति प्रदमन करती है।[12]

न्यायालय ने धारा 354(3) की संवैधानिकता को इस आधार पर धारित किया कि इस धारा के उपबंध के अन्तर्गत किसी विशेष मामले में अपराध एवं अपराधी से सम्बन्धित अपराध की गम्भीरता को बढ़ाने वाली परिस्थितियों (Aggravating Circumstances) एवं अपराध की गम्भीरता को कम करने वाली परिस्थितियों (Mitigating Circumstances) पर विचार करते हुए विवेक का प्रयोग किया जाता है तथा निम्न न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील एवं उच्चतर न्यायालयों में मृत्यु दण्ड से दण्डनीय मामलों को संदर्भित करने की व्यवस्था दण्ड निर्धारण में मनमाने विवेकीय शक्ति के मनमाने प्रयोग पर एक नियंत्रण है।[13] इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालयों को दी गयी दण्ड निर्धारण की विवेकीय शक्ति का न्यायिक ढंग से प्रयोग किसी भी प्रकार से विधायी शक्ति का न्यायालय को प्रत्यायोजित किया जाना (सौंपा जाना) है।[14]

मृत्यु दण्ड से दण्डित करने की दशा में न्यायालय द्वारा वर्णित किये जाने वाले "विशेष कारणों" अभिव्यक्ति की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने कहा कि धारा 354(3) के संदर्भ में अभिव्यक्ति "विशेष कारणों" का तात्पर्य "किसी विशेष" मामले में अपराध एवं अपराधी से जुड़ी अपवादिक रूप से गम्भीर परिस्थितियों पर आधारित "आपवादिक कारणों" से है। अतः इस धारा के उपबंध से यह स्पष्ट है कि हत्या या मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों में दोषसिद्धि (Conviction) होने पर मृत्यु दण्ड आत्यंतिक या अपवादिक मामलों में ही दिया जाना चाहिए।[15]

इसके साथ ही, न्यायालय ने विकल्प के रूप में मृत्यु दण्ड से दण्डनीय मामलों में दण्ड निर्धारण के लिए निम्नलिखित मार्ग–दर्शक नियम (Guidelines) बताये–

[10] (1983) 2 एस.सी.सी 277.
[11] तत्रैव पैरा 23 एवं 25.
[12] पूर्वोक्त संदर्भ सं. 8 पैरा 15.
[13] तत्रैव पैरा 145.
[14] तत्रैव पैरा 144.
[15] तत्रैव पैरा 161.

1. मृत्यु दण्ड से दण्डनीय आपराधिक मामलों में आजीवन कारावास सामान्य नियम है तथा मृत्यु दण्ड अपवाद। न्यायालय सामान्य नियम से हटकर मृत्यु दण्ड तभी दे सकते हैं जब उसके लिए विशेष कारण हों।[16]
2. चरम दण्ड (मृत्यु दण्ड) केवल चरम दोष के गम्भीरतम मामलों में ही दिया जा सकता है।[17]
3. मृत्यु दण्ड से दण्डनीय आपराधिक मामलों में दण्ड का निर्धारण करते समय अपराध को गम्भीरतम बनाने वाली परिस्थितियों (Aggravating Circumstances) के साथ ही अपराधी से जुड़ी परिस्थितियों (Mitigating Circumstances) को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।[18]
4. दण्ड निर्धारण के लिए विवेक का प्रयोग मामले से जुड़ी अपराध की गम्भीरता को बढ़ाने वाली तथा अपराध की गम्भीरता को कम करने वाली सभी परिस्थितियों को संतुलित करते हुए करना चाहिए।[19]

उपरोक्त मार्ग दर्शक नियमों के साथ ही न्यायालय ने निष्कर्ष के रूप में धारित किया कि मृत्यु दण्ड "असाधारण मामले" या "विरलतम मामले" (Rarest of Rare Cases) में दिया जाना चाहिए जब आजीवन कारावास का विकल्प पूरी तरह बन्द हो गया हो।[20]

अतः स्पष्ट है कि बचन सिंह के वाद में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु दण्ड से दण्डनीय मामलों में मृत्यु दण्ड असाधारण या विरलतम मामले में दिया जाना चाहिए जब आजीवन कारावास का विकल्प पूरी तरह बन्द हो चुका हो। इसलिए, वाद में प्रतिपादित सिद्धान्त को "विरलतम मामले का सिद्धान्त" या "Doctrine of Rarest of Rare Cases" भी कहते हैं।

किसी मामले को "विरलतम मामले" की श्रेणी में लाने वाली परिस्थितियों के निर्धारण के लिए कोई मापदण्ड निर्धारित करने से न्यायालय ने इस आधार पर इन्कार कर दिया कि दण्ड निर्धारण के विवेक को किसी कठोर मानक के जकड़ जाना (Strait-Socket) में कैद करना न तो व्यवहारिक है न ही वांछनीय।[21]

बचन सिंह के वाद के तीन साल बाद माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य[22] में न्यायालय ने "विरलतम मामले" की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा कि हत्या के जिन मामलों से समाज की सामूहिक चेतना को सदमा पहुँचे, वे मामले "विरलतम मामले" की श्रेणी में आयेंगे।[23] इसके साथ ही, न्यायालय ने निम्नलिखित श्रेणी के मामलों की पहचान "विरलतम मामले" के रूप में की–

1. हत्या कारित करने का ढंग– यदि हत्या इतनी नृशंसता या क्रूरता के साथ कारित की जाय कि उससे समाज में अत्यन्त रोष पैदा हो जाय। उदाहरण के लिए– 1. जब पीड़ित व्यक्ति के घर में इस आशय से आग लगा दी जाय कि वह जिन्दा जलकर मर जाय या 2. जब पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु कारित करने के लिए उसे अमानवीय प्रताड़ना या निर्दयता का विषय बनाया जाता है या 3. जब पीड़ित व्यक्ति के शरीर को टुकड़ों में काट दिया जाता है या उसके शरीर को अंग–भंग कर दिया जाता है।[24]
2. हत्या करने का उद्देश्य या प्रयोजन– जब हत्या इस प्रयोजन से कारित हो कि वह चरम दुराचरित या नीचता प्रदर्शित करे। उदाहरण के लिए– जब एक भाड़े का हत्यारा हत्या करता है या जब किसी निकट सम्बन्धी की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए सुनियोजित ढंग से हत्या की जाती है या जब मातृभूमि के साथ विश्वासघात करते हुए हत्या की जाती है।[25]

[16] तत्रैव पैरा 164 (a) एवं 209.
[17] तत्रैव पैरा 177.
[18] तत्रैव पैरा 197.
[19] तत्रैव.
[20] तत्रैव पैरा 209.
[21] तत्रैव पैरा 195.
[22] ए.आई.आर. 1983 एस.सी.सी. 957.
[23] तत्रैव पैरा 32.
[24] तत्रैव.
[25] तत्रैव.

3. समाज–विरूद्ध (Anti-social) प्रकृति का अपराध– 1. जब अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के किसी सदस्य की हत्या व्यक्तिगत कारणों से नहीं बल्कि सामाजिक रोष पैदा करने के लिए की जाती है या 2. वधुओं को जलाने के मामले या दहेज मृत्यु या जहाँ पुनः दहेज पाने के उद्देश्य से पुनर्विवाह करने के लिए हत्या की जाती है।[26]
4. अपराध का विस्तार– जब अपराध का दायरा तुलनात्मक रूप से बहुत विस्तृत हो। उदाहरण के लिए किसी परिवार के सभी या लगभग सभी सदस्यों की हत्या या किसी जाति, समुदाय या क्षेत्र के सदस्यों की बड़ी संख्या में हत्या।[27]
5. हत्या के शिकार का व्यक्तित्व– जब हत्या का शिकार हों– 1. एक निर्दोष बच्चा जिसने हत्या के लिए प्रकार का प्रकोपन नहीं दिया या जो नहीं दे सकता था, 2. निसहाय महिला या ऐसा व्यक्ति जो वयोवृद्ध होने या अक्षमता के कारण असहाय हो गया हो, 3. जब पीड़ित एक ऐसा व्यक्ति है जिस पर हत्यारा प्रभुत्व रखता है या पीड़ित एवं हत्यारे के बीच विश्वास का सम्बन्ध है, 4. जब पीड़ित व्यक्ति अपनी सेवाओं के कारण लोकप्रिय या पूज्यनीय होने के कारण प्रसिद्ध है और उसकी हत्या व्यक्तिगत कारणों से नहीं बल्कि राजनीति या इसी तरह के अन्य कारणों से होती है।[28]

माछी सिंह के वाद में विरलतम मामले की बनाई गयी श्रेणियों के विषय में न्यायालय ने स्वामी श्रद्धानन्द बनाम कर्नाटक राज्य[29] में यह अवलोकन किया गया कि माछी सिंह के वाद में विरलतम मामले की बनाई गयी श्रेणियाँ बहुत महत्वपूर्ण मार्ग दर्शक नियम प्रदान करती हैं किन्तु, इन्हें अपरिवर्तनीय या निरपेक्ष रूप में नहीं ग्रहण करना चाहिए क्योंकि माछी सिंह का वाद 1983 में निर्णीत हुआ था तथा उस समय ऐसे बहुत से अपराधों की श्रेणियाँ अस्तित्व में नहीं आई थीं जो कि आज विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए अपहरण तथा सामूहिक बलात्कार और इन अपराधों के दौरान हत्या इत्यादि। अतः आज विद्यमान अपराधों की श्रेणियों को भी माछी सिंह के वाद में बनाई गयी श्रेणियों के साथ मिलाकर देखना चाहिए।[30]

मृत्यु दण्ड का लघुकरण या कम किया जाना

मृत्यु दण्ड का लघुकरण (Commutation) कार्यपालिका एवं न्यायपालिका दोनों कर सकती हैं। अतः इस विषय पर अध्ययन को दो भागों में बाँटा जा सकता है– 1. कार्यपालिका द्वारा मृत्यु दण्ड का लघुकरण एवं 2. न्यायपालिका द्वारा मृत्यु दण्ड का लघुकरण।

1. कार्यपालिका द्वारा मृत्यु दण्ड का लघुकरण

दण्डों के संदर्भ में विभिन्न शक्तियाँ राष्ट्रपति (संघ की कार्यपालिका के प्रमुख) एवं राज्यपाल (राज्य की कार्यपालिका के प्रमुख) को भारत के संविधान के अनुच्छेद क्रमशः 72 एवं 161 के अन्तर्गत दी गयी हैं। इन शक्तियों में दण्डों के लघुकरण अर्थात् कम करने की भी एक शक्ति है। दण्डों के संदर्भ में कार्यपालिका को दी गयी शक्ति को सामान्यतया दया शक्ति (Mercy Power) कहते हैं।

कार्यपालिका मृत्यु दण्ड को कम करके उसे आजीवन कारावास के दण्ड में परिवर्तित कर सकती है। मृत्यु दण्ड को कम करने से सम्बन्धित विधि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 एवं 433 (क) में दी गयी है। धारा 433 (क) के अनुसार समुचित सरकार मृत्यु दण्ड को भारतीय दण्ड संहिता द्वारा उपबंधित किसी अन्य दण्ड के रूप में बदल सकती है। धारा 433 (क) के अनुसार जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया है जिसके लिए मृत्यु दण्ड का भी उपबंध है या जहाँ धारा 433 (क) के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को दिये गये मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में बदल दिया गया है वहाँ ऐसा व्यक्ति तब तक कारावास में रहेगा जब तक कि चौदह वर्ष का कारावास पूरा न हो जाय।

[26] तत्रैव.
[27] तत्रैव.
[28] तत्रैव.
[29] (2008) 13 एस.सी.सी. 767.
[30] तत्रैव पैरा 43.

अतः स्पष्ट है जहाँ मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराधों में मृत्यु दण्ड को सरकार (कार्यपालिका) द्वारा आजीवन कारावास में बदला जाता है वहाँ आजीवन कारावास की अवधि चौदह वर्ष होती है।

दण्डों के लघुकरण की कार्यपालिका की शक्ति (दया शक्ति) के विषय में शत्रुहन चौहान बनाम भारत संघ[31] में कहा गया कि दण्डों के संदर्भ में कार्यपालिका को दी गयी शक्ति कार्यपालिका का विशेषाधिकार या दया नहीं बल्कि उसका संवैधानिक कर्तव्य है।[32]

कार्यपालिका की दया शक्ति के क्षेत्र–विस्तार (Scope) पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय के पाँच जजों की संविधान पीठ ने केहर सिंह बनाम भारत संघ[33] में धारित किया कि अनुच्छेद 72 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति किसी आपराधिक मामले में उपलब्ध साक्ष्य की जाँच कर सकते हैं तथा दोष एवं दण्ड के संदर्भ में न्यायालय द्वारा लिये गये निर्णय से भिन्न निर्णय ले सकते हैं।[34]

इस संदर्भ में शत्रुहन चौहान के वाद में न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि राष्ट्रपति या राज्यपाल अनुच्छेद 72 या 161 के अन्तर्गत दी गयी शक्ति का प्रयोग करते हुए साक्ष्य की नये सिरे से जाँच कर सकते हैं।[35]

2. न्यायपालिका द्वारा मृत्यु दण्ड का लघुकरण

उच्चतम न्यायालय दया याचिका के निस्तारण में अनुचित विलम्ब के आधार पर मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में बदल सकता है। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने सर्वप्रथम टी॰वी॰ वथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य[36] में विचार किया। न्यायालय की एक खण्डपीठ ने उस वाद में धारित किया कि मृत्यु दण्ड से दण्डित कैदियों की लम्बे समय से निरूद्धि अनुचित एवं अतार्किक है क्योंकि यह अनुच्छेद 21 में दी गयी प्रक्रिया की उल्लँघनकारी है तथा मृत्यु दण्ड के निष्पादन में दो वर्ष से अधिक का विलम्ब मृत्यु दण्ड से दण्डित व्यक्ति को अनुच्छेद 21 के उल्लँघन के आधार पर मृत्यु दण्ड को निरस्त कराने का अधिकार प्रदान करता है।[37]

किन्तु, उच्चतम न्यायालय की एक तीन जजों की पीठ ने शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य[38] में इस विषय पर विचार करते हुए कहा कि मृत्यु दण्ड के निष्पादन में लम्बे समय तक विलम्ब निःसंदेह इस प्रश्न के विचारण के लिए महत्वपूर्ण है कि क्या लम्बे समय तक का विलम्ब मृत्यु दण्ड को निरस्त करने का आधार प्रदान करता है। किन्तु, इस सम्बन्ध में कोई कठोर नियम नहीं हो सकता है तथा वथीस्वरन के वाद में निश्चित किया गया दो वर्ष का विलम्ब लम्बे समय तक का विलम्ब नहीं माना जा सकता है।[39] न्यायालय ने इस संदर्भ में यह भी विचार व्यक्त किया कि लम्बे समय तक के विलम्ब के आधार मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में बदलने का कोई निरपेक्ष एवं बिना शर्त नियम नहीं प्रतिपादित किया जा सकता है। इस संदर्भ में विचार करते समय अन्य तथ्यों पर भी विचार करना चाहिए।[40]

किन्तु, जावेद अहमद अब्दुल हमीद पावला बनाम महाराष्ट्र राज्य[41] में एक खण्ड पीठ (जिसके एक न्यायाधीश वथीस्वरन मामले की खण्ड पीठ में भी थे) ने शेर सिंह के वाद में प्रतिपादित नियम को मानने से इन्कार कर दिया तथा वथीस्वरन के मामले में प्रतिपादित नियम के आधार पर ही इस वाद का निस्तारण कर दिया।[42]

---

[31] उच्चतम न्यायालय, 21 जनवरी 2014; http://indiankanoon.org/doc/599688.
[32] तत्रैव पैरा 17.
[33] (1989) 1 एस.सी.सी. 204.
[34] तत्रैव पैरा 10.
[35] पूर्वोक्त संदर्भ सं. 31 पैरा 12.
[36] ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 361.
[37] तत्रैव पैरा 21.
[38] ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 465.
[39] तत्रैव पैरा 18.
[40] तत्रैव पैरा 19.
[41] (1985) 1 एस.सी.सी. 275.
[42] तत्रैव पैरा 2–4.

मामला दो एवं तीन जजों की पीठ के बीच मतभेद का था, इसलिए इसे श्रीमती त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य[43] में उच्चतम न्यायालय की एक पाँच जजों की संविधान पीठ के पास भेजा गया। इस वाद में न्यायालय ने शेर सिंह के वाद में तीन जजों की पीठ द्वारा प्रतिपादित नियम को अनुमोदित तथा वथीस्वरन के वाद में खण्ड पीठ द्वारा प्रतिपादित नियम को निरस्त कर दिया।[44]

त्रिवेनीबेन के वाद में प्रतिपादित नियम की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने शत्रुहन चौहान के वाद में कहा कि न्यायालय इस विषय में यह अकाट्य विचार रखता है कि मृत्यु दण्ड के निष्पादन में अनियमित एवं अतार्किक विलम्ब मृत्यु दण्ड से दण्डित व्यक्ति के प्रति प्रताड़ना से जुड़ा है जो कि वास्तव में अनुच्छेद 21 का उल्लँघनकारी है तथा मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में बदलने का आधार प्रदान करता है। न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि कोई विलम्ब अनियमित एवं अतार्किक है या नहीं, इसका विचार प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर करना चाहिए तथा इस संदर्भ में कोई विस्तृत मार्ग दर्शक नियम नहीं बनाया जा सकता है।[45]

विधि आयोग की सिपारिश

दिल्ली उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति अजीत प्रकाश शाह की अध्यक्षता में गठित विधि आयोग अगस्त 2015 के अपने 262वाँ प्रतिवेदन (Report)[46] में मृत्यु दण्ड के संदर्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा–

1. मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास की तुलना में "भय के दाण्डिक लक्ष्य" (Penological Goal of Deterrence) की कोई ज्यादा पूर्ति नहीं करता है।[47]
2. "आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत" धारणा पर आधारित प्रतिकार का सिद्धान्त (Theory of Retribution) संविधान द्वारा मान्य दाण्डिक लक्ष्य के प्रतिकूल है।[48]
3. मृत्यु दण्ड पर निर्भरता आपराधिक न्याय प्रणाली में व्याप्त समस्याओं दयनीय अन्वेषण एवं अपराध रोक–थाम तथा पीड़ितों के अधिकारों आदि से ध्यान हटा देता है।[49]
4. पिछले एक दशक में, उच्चतम न्यायालय ने अनेक अवसरों पर मृत्यु दण्ड देने में मनमानी (Arbitrariness) के विषय में चिन्ता व्यक्त की है।[50]
5. मृत्यु दण्ड देने में होने वाली मनमानी को दूर करने के लिए कोई सैद्धान्तिक तरीका नहीं है।[51]

उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए विधि आयोग ने आतंकवाद से जुड़े अपराधों एवं युद्ध को छोड़कर शेष सभी अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड की समाप्ति की सिपारिश की।[52]

मृत्यु दण्ड के संदर्भ में वैश्विक स्थिति

"सिविल और राजनीतिक अधिकार अंतराष्ट्रीय प्रसंविदा" (International Convenant on Civil and Political Rights) मृत्यु दण्ड की समाप्ति के पक्ष में है जैसा कि अनुच्छेद 6 (2) एवं 6 (6) के उपबंधों से स्पष्ट है। अनुच्छेद 6(2) के अनुसार जिन देशों में मृत्यु दण्ड समाप्त नहीं किया गया है उनमें मृत्यु दण्डादेश

[43] ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 1335.
[44] तत्रैव पैरा 23.
[45] पूर्वोक्त संदर्भ सं. 31 पैरा 54.
[46] 262nd Report of Law Commission of India on Death Penalty, www.lawcommissionofindia.nic.in/reports/Report262.pdf
[47] तत्रैव पैरा 7.1.1.
[48] तत्रैव पैरा 7.1.2.
[49] तत्रैव पैरा 7.1.3.
[50] तत्रैव पैरा 7.1.4.
[51] तत्रैव पैरा 7.1.5.
[52] तत्रैव पैरा 7.2.4.

केवल अत्यन्त गम्भीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जायेगा तथा इस प्रसंविदा के उपबंधों एवं जाति संहार के अपराध के निवारण और दण्ड पर कन्वेंशन के प्रतिकूल अधिरोपित नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 6 (6) के अनुसार इस अनुच्छेद की किसी का सहारा इस प्रसंविदा के पक्षकार किसी राज्य द्वारा मृत्यु दण्ड को समाप्त न करने या उसमें विलम्ब करने के लिए नहीं लिया जायेगा।

संयुक्त राष्ट्र की सामन्य सभा ने समय–समय पर मृत्यु दण्ड पर विराम लगाने का आवाहन किया तथा मृत्यु दण्ड के निरन्तर प्रयोग पर चिन्ता व्यक्त की। मृत्यु दण्ड के प्रयोग पर विराम से सम्बन्धित 18 दिसम्बर 2014 को अंगीकार किये गये अपने प्रस्ताव में सामान्य सभा ने इस सम्बन्ध में पारित अपने सभी प्रस्तावों को पुनः दोहराया।[53]

19 दिसम्बर 2016 कां संयुक्त राष्ट्र के 117 देशों ने इस प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया।[54] 117 देशों द्वारा मृत्यु दण्ड पर विराम के लिए पारित प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करना इस बात का संकेत है कि विश्व समुदाय का झुकाव मृत्यु दण्ड की समाप्ति की ओर है।

2014 के अन्त तक 140 देश मृत्यु दण्ड को बनाये रखने वाले देश थे।[55]

समीक्षा एवं सुझाव

विधि आयोग के निष्कर्षों एवं वैश्विक झुकाव को ध्यान में रखते हुए भारत को भी मृत्यु दण्ड समाप्त करने की दिशा में कदम उठाना चाहिए। मृत्यु दण्ड की समाप्ति का यह तात्पर्य नहीं है कि अपराधी बिना दण्ड पाये ही छूट जायेगा क्योंकि आजीवन कारावास मृत्यु दण्ड का वैकल्पिक दण्ड है तथा मृत्यु दण्ड से सम्बन्धित वाद–विवाद में यह बात प्रायः लुप्त हो जाती है।

किसी दोषसिद्ध व्यक्ति को कारागार इसलिए भेजा जाता है कि वह अपने कृत्यों का पश्चाताप करे तथा अपने को सुधारे। आजीवन कारावास के दौरान व्यक्ति के बहुत से मौलिक अधिकार प्रतिबंधित हो जाते हैं तथा व्यक्ति को दुख भरी जिन्दगी जीना पड़ता है। वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन–यापन नही कर सकता है। अतः आजीवन कारावास के दण्ड के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी बची हुई पूरी जिन्दगी दुख एवं कष्ट के साथ व्यतीत करता है जबकि मृत्यु दण्ड में व्यक्ति एक ही बार दुख या कष्ट, चाहे जो भी हो, झेलना पड़ता है।

आजीवन कारावास के अन्तर्गत व्यक्ति के पुनर्वास की भी सम्भावना रहती है यदि वह अपने कृत्यों पर पश्चाताप करता है तथा अपने अन्दर सुधार का प्रयास करता है। इस प्रकार आजीवन कारावास के द्वारा दण्ड शास्त्र के सबसे वाँछनीय लक्ष्य अपराधी का निदान एवं अपराध की रोक–थाम की पूर्ति होती है।

डॉ. राजकुमार
सहायक आचार्य, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0)

[53] https://en.wikipedia.org/wiki/unitednationsmorotoriumondeathpenalty.
[54] http://www.worldcoalition.org/The-UN-General-Assembly-Voted-overwhelmingly-for-a-6th-resolution-calling-for-a-universal-moratorium-on-execution
[55] पूर्वोक्त संदर्भ सं. 46 पैरा 3.5.